RNI No. 26281/74 रजि. नं. पी.बी./जे.एल-011/2015-17

कृण्वन्तो ओ३म् विश्वमार्यम्

साप्ताहिक
आर्य मर्यादा
आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब का प्रमुख साप्ताहिक पत्र

मूल्य : 2 रु.
वर्ष: 72 अंक : 30
सृष्टि संवत् 1960853116
25 अक्तूबर 2015
दयानन्दब्द 189
वार्षिक : 100 रू.
आजीवन : 1000 रू.
दूरभाष : 2292926, 5062726

जालन्धर

वर्ष-72, अंक : 30, 22/25 अक्तूबर 2015 तदनुसार 9 कार्तिक सम्वत् 2072 मूल्य 2 रु०, वार्षिक 100 रु० आजीवन 1000 रु०

धन खोजने वाली बुद्धियों को बढ़ा

-ले० श्री स्वामी वेदानंद जी (दयानन्द) तीर्थ

येन वंसाम पृतनासु शर्धतस्तरन्तो अर्य आदिशः।
स त्वं नो वर्ध प्रयसा शचीवसो जिन्वा धियो वसुविदः।।

-ऋ० ८।६०।१२।

शब्दार्थ-अर्यः-शत्रु की **आदिशः**-आयोजनाओं को **तरन्तः**-विफल करते हुए हम **येन**-जिसके द्वारा **पृतनासु**-युद्धों में **शर्धतः**-ललकारने वालों को **वंसाम**-वश में कर सकें, **सः+त्वम्**-वह **नः**-हमें **प्रयसा**-प्रयास के साथ **वर्ध**-बढ़ा और हे **शचीवसो**-बुद्धि और शक्ति के धनी! **वसुविदः**-धन खोजने वाली **धियः**-बुद्धियों को **जिन्व**-उत्तेजित कर।

व्याख्या-जब दो राष्ट्रों में परस्पर वैर-विरोध बढ़ जाता है, तब वे एक-दूसरे को दबाने का उपक्रम करने लगते हैं। उस समय राष्ट्र के उत्साही, वीर सैनिक अथवा राष्ट्रवासी-जन अपने राष्ट्रपति, सेनापति तथा नेता से जो कुछ कहते हैं, उसका थोड़ा-सा दिग्दर्शन इस मन्त्र में कराया गया है। राष्ट्रवासी कह रहे हैं-शत्रु सिर पर आ गया है, वह हमें दास बनाने की योजनाएं बना रहा है। आपके नेतृत्व में शत्रु की सभी योजनाएं, सभी चालें हम विफल कर देंगे। शत्रु हमें ललकार रहा है, उसे अपने जनबल पर, बाहुबल पर अभिमान है, किन्तु हमें दृढ़ विश्वास है कि हम भी उसे परास्त कर देंगे। हां, आप हमारा नेतृत्व करते रहें। सैन्य-संचालन एक विशिष्ट जटिल कला है। विविध भावनाओं वाले जनों को एक मन वाला बनाकर एक उद्देश्य के लिए अपने प्राण तक देने को तत्पर कर देना खिलवाड़ नहीं है। इसके लिए विशाल बुद्धि, सुपटु चातुर्य, दीर्घदर्शिता आदि अनेक गुणों की अपेक्षा होती है। फ़सादी शत्रु के प्रति राष्ट्रवासियों के भावों का क्षीण-सा चित्र निम्नलिखित मन्त्र (अ० १।२१।२) में है-

वि न इन्द्र मृधो जहि नीचा यच्छ पृतन्यतः। अधमं गमया तमो यो असमाँ अभिदासति।।

हे इन्द्र! तू हत्यारों को मार दे। फ़साद करने वालों को, हमसे युद्ध करने वालों को नीचा कर दे। जो हमें दबाना चाहता है, दास बनाना चाहता है, उसे घोर अन्धकार में पहुंचा दे।

आलस्य और प्रमाद पराजय के साधन हैं, तू विजय चाहता है, तो-'स त्वं नो वर्ध प्रयसा शचीवसो'-बुद्धि के धनी! तू हमें पुरुषार्थ के साथ आगे बढ़ा। केवल उजड्डपन से विजय नहीं मिलता। क्षणिक वाह-वाह उसे ही मिल जाए जो अपने भुजबल के उन्माद में विचारे बिना शत्रुदल पर टूट पड़े, किन्तु स्थायी विजय उसके भाग्य में नहीं होता। ऐसा प्रयास प्रायः सब ओर से निराश जन किया करते हैं। निराशा की दशा में बुद्धि अपने ठिकाने नहीं रहती। बुद्धि ही वास्तव में बल है, जैसा कि एक नीतिकार ने कहा है-'बुद्धिर्यस्य बलं तस्य निर्बुद्धेस्तु कुतो बलम्' बल उसी का है, जिसके पास बुद्धि है, बुद्धिरहित में बल कहां? सचमुच मूर्ख निर्बल होता है, अतएव सेनानायक बुद्धिमान होना चाहिए। इसी भाव से मन्त्र में सेनानायक को 'शचीवसु'-बुद्धि का धनी कहा है। मूर्ख को नहीं बनाना चाहिए। बुद्धिमान् नेता का हित इसी में है कि उसके अनुयायी भी बुद्धिमान हों। वेद ने कहा ही है-'**धियो जिन्व वसुविदः**' धन प्राप्त कराने वाली बुद्धियों को उत्तेजित कर। नेता बुद्धिमान्, अनुयायी बुद्धिमान्, सारा राष्ट्र बुद्धिनिधान, फिर कहीं से किसी भय की सम्भावना नहीं रहती।

-स्वाध्याय संदोह से साभार

विद्वान लेखक महानुभावों से नम्र निवेदन

आर्य जगत के प्रसिद्ध विद्वान लेखक महानुभावों को सूचित किया जाता है कि आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब (रजि.) के मुख्य पत्र आर्य मर्यादा साप्ताहिक का दीपावली एवं महर्षि दयानन्द निर्वाण दिवस का विशेषांक पूरी सज धज के साथ प्रकाशित किया जा रहा है। इस विशेषांक के लिये दीपावली एवं महर्षि दयानन्द सरस्वती से सम्बन्धित आपके अप्रकाशित विद्वतापूर्ण लेख सादर आमंत्रित हैं। आप अपने लेख शीघ्र अति शीघ्र आर्य मर्यादा कार्यालय गुरूदत भवन, चौक किशनपुरा जालन्धर में भेजने की कृपा करें। समय पर प्राप्त होने वाले लेखों को ही आर्य मर्यादा विशेषांक में उचित स्थान दिया जायेगा। -व्यवस्थापक आर्य मर्यादा

वियोग की वेदना

-ले० श्री भद्रसेन वेद दर्शनाचार्य-होशियारपुर

आज जिस जीवन को हम बिता रहे हैं, उसके लिए जहां अन्य अनेक बातों को जानने की ज़रूरत है। वहां अकस्मात् घटने वाली इस मृत्यु की घटना को भी जानना अत्यावश्यक है। अन्यथा गौतम बुद्ध या बालक मूलशंकर की तरह एकदम पासा पलट सकता है या एकदम हड़बड़ा जाने के कारण अप्रत्याशित भी घट सकता है क्योंकि आज जहां विज्ञान ने अपनी अनेक उपलब्धियों से मानव समाज का जीवन सुख-सुविधाओं से भर दिया है। वहां विज्ञान द्वारा बनाए गए यन्त्रों और यानों की आए दिन होने वाली दुर्घटनाओं से मौत खिलौना बन कर रह गई है। तभी तो आकाशवाणी और समाचार पत्रों से आए दिन इसके समाचार सामने आ रहे हैं। इसके साथ ही पारस्परिक क्लेश, द्वेष, स्वार्थ एवं बदले की भावना के कारण भी अनेक मौतें होती रहती हैं।

इन दुर्घटनाजन्य और महामारियों द्वारा होने वाली मौतों से सिद्ध होता है, कि किसी की मृत्यु केवल भगवान् की व्यवस्था के अनुसार स्वाभाविक ही नहीं होती। अपितु उसकी अपनी या दूसरों की गलतियों के कारण भी हो जाती है। अत: केवल भाग्य का खेल समझ कर के ही आज दिल को सन्तोष देना बिल्ली को देखकर कबूतर के आंख बंद करने के ही समान है। अत: मृत्यु और इस वियोग के सम्बन्ध में कुछ विशेष विचारना और जानना बहुत ज़रूरी हो जाता है।

हम सभी भारतीय वेद, उपनिषद्, गीता आदि ग्रन्थों और अपनी भावना के अनुसार आत्मा को नित्य मानते हैं। हमारी नित्य आत्मा को न तो अग्नि जला सकती है, न जल गला सकता है और न ही वायु सुखा सकता है, अर्थात् हमारी आत्मा अजर-अमर है। जब आत्मा अजर, अमर है, तो फिर हम किसी की मृत्यु पर शोक के रूप में रूदन क्यों करते हैं ? आत्मा की अमरता और मृत्यु का आपस में क्या मेल? आत्मा को नित्य मानने पर रोने का क्या प्रसंग ? एक ओर तो हम आत्मा को अमर मानते हैं पर दूसरी ओर अमर आत्मा के प्रति यह करुण क्रन्दन ? दोनों का मेल कुछ अद्भुत सी बात है। कहां अमरता और कहां मृत्यु शोक ?

मृत्यु की परिभाषा-

वियोग-बिछोह का भाव है किसी का किसी से अलग होना। यही भाव मृत्यु का भी है। मृत्यु शब्द मृड़ प्राणत्यागे (प्राणों का छूटना, निकलना) धातु से बनता है। जिसका भाव है प्राण, चेतना या आत्मा का अपने कर्म के अनुसार परमात्मा की व्यवस्था से पहले पाए हुए शरीर, इन्द्रिय और मन से अलग होना। अर्थात् सीप से मोती के निकल जाने पर जैसे वह सीप बे-कीमती हो कर रह जाती है, वैसे ही इस नित्य आत्मा के शरीर से निकलते ही यह शरीर मिट्टी का ढेर ही होकर रह जाता है और तब यह शीघ्र ही सड़ना शुरू कर देता है।

मृत्यु शब्द पर विचार करते हुए निरुक्त (11, 6) में लिखा है, कि मारयतीति सत:-मारती है अर्थात् पहले से प्राप्त शरीर, इन्द्रिय और मन से नित्य आत्मा को अलग करती है और इसके साथ ही मृतं च्यावयति-अर्थात् पूर्व प्राप्त शरीर आदि से अलग कर इस अजर, अमर आत्मा को ले जाती है अर्थात् एक नए शरीर धारण का अवसर प्राप्त कराती है। तभी तो आत्मा अपने कर्मानुसार जीर्ण-शीर्ण विविध चिन्ताग्रस्त कलेवर से मुक्त होकर लाड-चावों से भरे नए निश्चिन्त शिशु जीवन को प्राप्त करने में सक्षम होता है। तभी तो गीताकार ने कहा-

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय...।
2,22

जैसे कोई पुराने, फटे वस्त्रों को फेंक कर दूसरे नए वस्त्रों को ग्रहण करता है तथैव यह अजर-अमर आत्मा जीवन-यात्रा में कर्त्तव्य कर्मों के करने में असमर्थ देह को छोड़कर आशा भरे नए देह को धारण करता है।

इसी भाव को अंग्रेज़ी भाषा के एक कवि लांगफ्रैलो ने इस रूप में व्यक्त किया है। मृत्यु-मृत्यु (सर्वनाश) नहीं है, जैसा कि हमें दिखती है। वह तो जीवन का परिवर्तन है। थोड़े दिनों का हमारा यह जीवन उस दिव्य जीवन का बाह्य भाग है। जिसके प्रवेश द्वार को हम मृत्यु कहते हैं।

निर्भय स्वागत करो मृत्यु का,
मृत्यु एक है विश्राम-स्थल।
जीव जहां से चलता है, धारण
कर नव जीवन सम्बल।।
मृत्यु एंक सरिता है जिसमें, श्रम
से कातर जीव नहा कर।
फिर नूतन धारण करता है,
काया पूर्व बहा कर।।

ऐसी वास्तविक स्थिति के होने पर भी हम अपने मोह एवं स्वार्थ के कारण अपने प्रियजनों के वियोग को दूसरे रूप में लेते हैं। आत्मा की अजरता-अमरता की विद्य-मानता में भी हमारे रूदन एवं वियोग की अनुभूति के कारण को समझने के लिए हमें पारस्परिक सम्बन्धों के सम्बन्ध में भी कुछ विचार करना आवश्यक हो जाता है।

पारस्परिक सम्बन्धों का आधार-

हमारे ये सांसारिक सम्बन्ध आत्मा से हैं या विनाशशील शरीर से ? इस दृष्टि से जब हम इस समस्या पर विचार करते हैं, तो ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे पारस्परिक सम्बन्ध नित्य आत्मा से नहीं है। यदि उससे होते तो ये सम्बन्ध नित्य होते ? क्योंकि आत्मा अमर है। तब तो जिस का जिस से जैसा जो सम्बन्ध है, वह उसके साथ सदा उसी रूप में ही होता। परन्तु शास्त्रों के प्रमाणों और पूर्वजन्म की सामने आने वाली घटनाओं से यह स्पष्ट होता है, कि ये सम्बन्ध बदलते रहते हैं। तभी तो निरुक्तकार (14.9) ने कहा है कि न जाने मैंने कितने माता-पिताओं के दर्शन किए हैं। नित्य सम्बन्ध मानने पर तब तो किसी का कभी भी मोक्ष सिद्ध नहीं हो पाएगा क्योंकि संसार में रहते हुए ही कोई पारस्परिक सम्बन्ध को निभा सकता है।

इस सम्बन्ध में दूसरी विचारणीय बात यह है, कि यदि एक आत्मा को दूसरे आत्मा से आत्मिक सम्बन्ध है, तो सभी आत्माओं के एक जैसा होने से एक की मृत्यु पर सभी एक समान वियोग का दु:ख अनुभव करें। परन्तु स्थिति ऐसी नहीं है। वियोग-दु:ख की अनुभूति का प्रभाव केवल पारिवारिकों तक ही देखा जाता है, और वह भी क्रमश: निकटता के आधार से। हम प्रतिदिन दुनिया में देखते हैं, कि जब कुछ वियोग के दु:ख की असह्य वेदना अनुभव कर रहे होते हैं, तो कुछ उसी समय खुशी भी मना रहे होते हैं। इससे यह सिद्ध होता है कि हमारे ये सम्बन्ध आत्मा से नहीं है।

तो क्या ये सम्बन्ध शरीरों से है? जब हम इस पहलू पर विचार करते हैं, तो यह दृष्टिकोण और भी अधिक बे-बुनियाद दिखाई देता है। यदि शरीरों से हमारा पारस्परिक सम्बन्ध होता, तो फिर कोई उनको न जलाता, अपितु उनको जैसे-कैसे सम्भाल कर रखते, पर वह फिर भो हमारी किसी उपयोग में तो आ नहीं सकता। तभी तो निकट से निकट के सम्बन्धी भी कहने लग जाते हैं-जल्दी करो, अब तो यह सड़ने लग पड़ी है। इसलिए ही शास्त्र शरीर जलाने को एक पुण्य का कार्य बताते हैं। जब हमारा पारस्परिक सम्बन्ध न आत्मा से है और न ही शरीर से तो विवेकशील प्राणी के नाते यह और भी अधिक गहराई से सोचना आवश्यक हो जाता है, कि पुन: हमारे पारस्परिक सम्बन्धों का आधार क्या है ?

हम इस पर जब खुले मन से विचार करते हैं तो इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि इस रहस्य को समझने के लिए जन्म और मृत्यु के रूप को जानना आवश्यक हो जाता है।

न्यायदर्शन (1.1.19) के प्राचीनतम भाष्याकार महर्षि वात्सयायन का मृत्यु विषयक ''यत्र...वर्तमान्: पूर्वोपात्तान्देहा-दीन्...'' यह वाक्य स्पष्ट संकेत करता है कि नित्य आत्मा के किसी शरीर, इन्द्रिय और मन से जुड़ने का नाम जन्म है और अमर आत्मा का पूर्व प्राप्त शरीरादि से अलग होना ही मृत्यु है। अर्थात् इनके पारस्परिक सम्बन्ध और असम्बन्ध का ही नाम जन्म-मृत्यु है। इसी जीवन-मरण की 'अजीब पहेली' को समझाने का ही प्रयास कठ उपनिषद् के तीसरे प्रश्न या वर में किया गया है। अत: आत्मा और शरीर के सम्बन्ध से ही हमारे पारस्परिक सम्बन्ध हैं। जब तक शरीर तथा आत्मा का सम्बन्ध रहता है, तभी तक उस सम्बन्ध से हमारे वे-वे सम्बन्ध जुड़े रहते हैं। इन दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध के टूट जाने पर उस सम्बन्ध से सम्बन्धियों के सम्बन्ध भी तब स्वत: टूट जाते हैं। (क्रमश:)

सम्पादकीय.....✍

भारतीय संस्कृति में गौ हत्या या गौ रक्षा?

पिछले कुछ दिनों से देश में बीफ अर्थात् गौमांस के ऊपर तरह-तरह की चर्चाएं चल रही हैं। हर कोई अपने-अपने हिसाब से तर्क देकर अपने मत की पुष्टि करता है। हमारे तथाकथित नेता लोग जिन्हें हमारी संस्कृति और सभ्यता का लेशमात्र भी ज्ञान नहीं है, वे भी अपने अनाप-शनाप बयानों के द्वारा इस मुद्दे को और विवादित बना रहे हैं। कुछ स्वार्थी नेता यह कहकर इस विवाद को बढ़ा रहे हैं कि हिन्दू भी गौ मांस खाते हैं, हमारे प्राचीन ऋषि-मुनि भी गौमांस खाते थे। ऐसे स्वार्थी नेता जो मुस्लिम समुदाय के वोट लेने के लिए किसी भी हद तक गिर सकते हैं, अपनी संस्कृति और सभ्यता पर प्रश्नचिह्न खड़ा कर रहे हैं। ऐसा स्वार्थी नेता अपने स्वार्थ के लिए नैतिकता का त्याग करके अपनी देश की संस्कृति के साथ खिलवाड़ कर रहे हैं। भारतीय संस्कृति का मूल आधार वेद हैं। इस लेख में वेदों के आधार पर यह दिखाया है कि हमारी संस्कृति कभी भी गाय की हत्या करने का आदेश नहीं देती और न ही हमारे ऋषि-मुनि मांस खाते थे।

भारतीय संस्कृति और चिन्तन परम्परा में गौ को अत्यधिक पूजनीय माना गया है। जो गौओं को पालते हैं, उनकी रक्षा करते हैं उनको गाय **भूयो भूयो रयिमिदस्य वर्धयन्** गौधन उन गृहस्थों के ऐश्वर्यों की वृद्धि करता है। इसलिए वेद में स्पष्ट रूप से यह उद्घोषणा की गई है कि गौ माता, पुत्री और बहन के समान अघ्न्या है। ऋग्वेद का मन्त्र है-

माता रूद्राणां दुहिता वसूनाँ स्वसादित्यानाम् तस्यनाभिः।
प्र नु वाचं चिकितुषे जनायमागामानागामदितिं वधिष्ट।।

गौ राष्ट्र के रूद्र, वसु और आदित्य ब्रह्मचारियों की माता, पुत्री और बहिन है। ये अमृत हैं। ऐसी निष्पाप गौ को कभी मत मार। इसलिए गौ को वेद में रक्षा करने योग्य बतलाया है।

इमं साहस्रं शतधारमुत्संव्यच्यमानं शरीरस्य मध्ये।
घृतं दुहानामदितिं जनायाग्ने मा हिंसीः परमे व्योमन्।। यजु.

अर्थात् सैकड़ों तथा हजारों का धारण और पोषण करने वाली दूध का कुआं, मनुष्यों के लिए घृत देने वाली और जो न काटने योग्य गौ है उसकी हिंसा मत कर। महर्षि दयानन्द जी इसी मन्त्र पर भावार्थ में लिखते हैं- जिस गाय से दूध, घी आदि पदार्थ उत्पन्न होते हैं, जिनके द्वारा सभी का रक्षण होता है, ऐसी गौ कभी भी मारने योग्य नहीं है। जो गाय की हिंसा करे उसे राजा दण्ड़ दे। वेद में सभी पशुओं की रक्षा के लिए कहा है। अथर्ववेद में कहा गया है कि क्षत्रिय ब्राह्मण की गौ की रक्षा करे, उसकी हिंसा कभी न करे। गौ को अघ्न्या कहा है। कहने का अभिप्राय यह है कि गौ को कभी नहीं मारना चाहिए। निरूक्त में भी गौ के जो नाम दिए है वे हैं- अघ्न्या, उस्रा, उस्रिया, अही, मही, अदिति, जगती और शक्करी। इन शब्दों में अघ्न्या और अदिति शब्द गौ के अवध्य होने की तथा अही और मही शब्द उसके पूज्य होने की सूचना देते हैं। इसी प्रकार वेद में अनेकों स्थलों पर गौ को अघ्न्या कहा है। जो उसकी रक्षा करता है उसकी प्रशंसा वेद द्वारा की गई है। मारूतं गोषु अघ्न्यं शर्धः प्रशंसः अर्थात् जो मारूत् गौ की रक्षा करते हैं उनके बल की रक्षा करो। इयं अघ्न्या अश्विभ्यां पयः दुहाम् अर्थात् यह अवध्य गौ अश्वि देवों के लिए दूध दे। अघ्न्ये विश्वदानीं तृणं अद्धि अर्थात् हे अवध्य गौ तू सदा घास खा। इसके अलावा और भी शास्त्रों के प्रमाण हैं जहां पर गाय को पूजा के योग्य बताया है। गावो विश्वस्य मातरः अर्थात् गाय सारे संसार की माता है।

दुर्भाग्य से लोग वेद के मार्ग को भूल गए, विद्या आदि से रहित हो गए, वाममार्ग का जोर हुआ उस समय मांस की आहुतियां यज्ञ में दी जाने लगी। वेद से अलग भारतीय साहित्य में भी गौ का महत्व बहुत दर्शाया गया है। जैसा कि महाभारत में वर्णन आया है कि-

यज्ञांगं कथिता गवो यज्ञ एव च वासवः।
एतामिश्च विना यज्ञो न वर्तेत कथंचन।।

भीष्म जी कहते हैं कि वासवः गौओं को यज्ञ का अंग तथा साक्षात् यज्ञस्वरूप कहा गया है। क्योंकि इन के दुग्ध, दधि और घृत के बिना यज्ञ सम्पन्न नहीं होता। महाभारत में भी गौवों को अमृत की खान कहा है। वास्तव में गौ सर्वश्रेष्ठ पशु है, फिर भी मनुष्य पता नहीं उसकी हिंसा क्यों करता है। ये गौवें विकार रहित अमृत धारण करती हैं और दुहने पर अमृत रूपी दूध हमें प्रदान करती हैं। सारा संसार उनके सामने नतमस्तक होता है।

रामायण में प्रसंग आता है कि महर्षि विश्वामित्र राम को लेने के लिए अयोध्या आए थे क्योंकि राक्षस लोग उनके यज्ञों में विघ्न ड़ालते थे। यज्ञ में मांस आदि फैंक कर यज्ञ का अनादर करते थे। ऋषि-मुनि अपने यज्ञ की रक्षा करना चाहते थे इसलिए वे राजा दशरथ के पास जाकर यज्ञ की रक्षा करने के लिए उनसे राम को मांगते हैं। जो मूर्ख यह कहते हैं कि हमारे ऋषि-मुनि भी मांस खाते थे, उन्हें यह जानने का प्रयास करना चाहिए कि अगर वे मांस खाते होते तो उन्हें रक्षा की क्या आवश्यकता थी। वे राक्षसों के द्वारा फैंके गए मांस को खा लेते और राजा दशरथ के पास सहायता मांगने नहीं जाते। इसलिए यह स्पष्ट है कि हमारे ऋषि-मुनि शाकाहारी थे और कंद-मूल खाकर वे वनों में साधना किया करते थे जिनके कारण हमारी संस्कृति आज भी जिंदा है।

युग प्रवर्त्तक महर्षि दयानन्द जी जो उन्नीसवीं शताब्दी के महान् सुधारक हुए हैं वे गौओं के प्रति अपने उद्गार प्रकट करते हुए करूणास्रोत बहाते हुए गोकरूणानिधि नामक ग्रन्थ में कहते हैं- देखिए जो पशु निःसार घास, तृण पत्ते, फल फूल आदि खाएं और सारा दूध आदि अमृत रत्न देवें, हल गाड़ी में चल के अनेकविध अन्नादि उत्पन्न करके नीरोगता करे, मित्र आदि के समान पुरूषों के साथ विश्वास और प्रेम करें, जिधर चलाए उधर चलें, अपने स्वामी की रक्षा के लिए तन लगावे इत्यादि शुभ गुणयुक्त सुखकारक पशुओं के गले छुरे से काट कर जो अपना पेट भरकर अपनी व संसार की हानि करते हैं, क्या संसार में उनसे अधिक कोई विश्वासघाती, अनुपकारी दुःख देने वाले पापीजन होंगे? गोकरूणानिधि में महर्षि दयानन्द गौ का आर्थिक दृष्टि से लाभ गिनाते हुए लिखते हैं कि- इस गाय के पीढ़ी में छः बछिया और सात बछड़े हुए इनमें से एक रोग आदि से मृत्यु सम्भव है तो भी बारह शेष रह जाते हैं। उन बछियों के दूध मात्र से १५४४४० व्यक्तियों का पालन हो सकता है। अब रहे छः बैल उनमें एक जोड़ी से २०० मन अन्न उत्पन्न हो सकता है। इस प्रकार तीन जोड़ी ६०० मन अन्न उत्पन्न कर सकती है। प्रत्येक मनुष्य का तीन पाव भोजन गिने तो २५६००० मनुष्यों को एक बार भोजन होता है। इन गायों को परपीढ़ियों का हिसाब लगाकर देखा जाए तो असंख्य मनुष्यों का पालन हो सकता है और इसके मांस से अनुमान है कि अस्सी मासांहारी मनुष्य तृप्त हो सकते हैं।

भारतीय इतिहास में आर्य राजाओं के यहां तो गौ रक्षा होती ही थी। इतिहास प्रसिद्ध महाराजा दिलीप ने शेर के सामने अपने आपको गौ की रक्षा हेतु प्रस्तुत किया। तभी तो उस समय का भारत समस्त संसार का गुरू कहलाता था। मनु महाराज की यह घोषणा कि पृथ्वी के सभी मानव भारत में शिक्षा लेने आते थे। वह युग कितना सुन्दर रहा होगा, इसका कारण गौ का सात्विक दूध और गौ रक्षा का ही फल था। आज भारत में भी गौओं का मांस बेचकर खाया जा रहा है फिर भी दाने-दाने के लिए दूसरे देशों पर निर्भर है। महर्षि दयानन्द जी ने गोकरूणानिधि में ठीक ही कहा है कि गौ आदि पशुओं के नाश से राजा और प्रजा का भी नाश हो जाता है।

आज के नेता जो बिना जाने, बिना सोचे समझे जो बयानबाजी करते हैं उन्हें अपनी संस्कृति का अवलोकन करना चाहिए कि हमारी संस्कृति में कहां पर गाय का वध करना लिखा है, कहां पर ऋषियों-मुनियों द्वारा गौमांस खाने की बात कही गई है। अपने वोट बैंक की राजनीति के लिए और एक समुदाय को खुश करने के लिए अपनी संस्कृति को दांव पर लगाना कहां तक उचित है। जिन्हें अपनी संस्कृति, सभ्यता का जरा भी ज्ञान नहीं है वे लोग भी संस्कृति कर बखान करने लगते हैं। वैदिक संस्कृति में सर्वे भवन्तु सुखिनः को आदर्श माना जाता है। चाहे कोई पशु हो या मनुष्य सबके सुख के लिए कामना की जाती है। इसलिए हमारी संस्कृति में किसी प्रकार की भी हिंसा के लिए कोई स्थान नहीं है। हमें कुछ भी बोलने से पहले अपनी संस्कृति और सभ्यता का अवलोकन करना चाहिए।

-प्रेम भारद्वाज, संपादक एवं सभा महामन्त्री

सर्वपल्ली डा. राधाकृष्णन-एक महान् शिक्षक

-ले. डा. एच. कुमार कौल, डायरैक्टर, गांधी आर्य सी. सै. स्कूल बरनाला

एक महान शिक्षा शास्त्री का कहना है कि ''किसी भी वृक्ष की उपयोगिता का पता इसके फलों से लगाया जा सकता है।'' इसी प्रकार यदि हम अपनी शिक्षा की उपलब्धियों को देखें, तो हम यह कह सकते हैं कि हमारी शिक्षा व्यवस्था पूरी तरह असफल हो चुकी है। शिक्षा का उद्देश्य केवल किताबों से प्राप्त सूचना देना मात्र नहीं है। न ही शिक्षा के उद्देश्य को केवल किताबों से प्राप्त ज्ञान से जोड़ा जा सकता है। शिक्षा का वास्तविक उद्देश्य मानसिक, शारीरिक और आध्यात्मिक शक्तियों का विकास करना है। डा. राधाकृष्णन का भी शिक्षा के बारे में ऐसा ही विचार था। उनका मानना था कि शिक्षा में मूल्य आधारित शिक्षा की आवश्यकता है।

डा. राधाकृष्णन भारतीय संस्कृति से ओतप्रोत एक विख्यात शिक्षाविद, महान दार्शनिक, उत्कृष्ट वक्ता और एक आस्थावान हिन्दू विचारक थे। वे भारत के दूसरे राष्ट्रपति थे। राजनीति में आने से पूर्व उन्होंने अपने जीवन के महत्त्वपूर्ण वर्ष शिक्षक के रूप में व्यतीत किए थे। उनमें एक आदर्श शिक्षक के सारे गुण मौजूद थे। उन्होंने अपना जन्म दिन अपने व्यक्तिगत नाम से नहीं अपितु सम्पूर्ण शिक्षक समाज को सम्मानित किए जाने के उद्देश्य से शिक्षक दिवस के रूप में मनाने की इच्छा व्यक्त की थी। जिसके परिणामस्वरूप आज भी सारे देश में उनका जन्म दिन (5 सितम्बर) को प्रति वर्ष शिक्षक दिवस के नाम से ही मनाया जाता है।

डा. राधाकृष्णन समस्त विश्व को एक शिक्षणालय मानते थे। उनकी मान्यता थी कि शिक्षा के द्वारा ही मानव मस्तिष्क का सदुपयोग किया जा सकता है। उनका ये भी मानना था कि शिक्षा का कार्य केवल तकनीकी दक्षता ही नहीं बल्कि आत्मा की महानता प्राप्त करना भी है। ज्ञान ही हमें शक्ति देता है। इसलिए उनका विचार था कि मानव जाति एक होनी चाहिए। विश्व को एक इकाई समझ कर ही शिक्षा का प्रबन्धन किया जाना चाहिए। उनका मानना था कि हम जिस विषय को पढ़ाते हैं, पढ़ाने से पहले स्वयं उसका अध्ययन करना आवश्यक है यही कारण है कि दर्शन जैसे गंभीर विषय को भी वह सरल और रोचक बना देते थे। वे अपनी बुद्धिमत्तापूर्ण व्याख्याओं, आनन्द-मयी अभि-व्यक्तियों और हंसाने व गुदगुदाने वाली कहानियों से अपने छात्रों को मन्त्रमुग्ध कर दिया करते थे। उनका मानना था कि शिक्षा का उद्देश्य तभी पूर्ण होता है जब हम नैतिक मूल्यों को अपने आचरण में उतारें। आज हम देखते हैं कि नैतिक मूल्यों को न मानने के कारण ही स्कूल, कालेज हिंसा का क्षेत्र बन गए हैं। हम अपनी सभ्यता और संस्कृति को भूलते जा रहे हैं। हम अपने विचारों को क्रियात्मक रूप नहीं दे पा रहे हैं। उनका मानना था कि शिक्षा भौतिकवादिता पर नहीं मानवीय सभ्यता और संस्कृति पर आधारित होनी चाहिए। उनका मानना था कि आध्यात्मिक जीवन भारत की प्रतिभा है।

इन दिनों जब शिक्षा का गुणात्मक ह्रास हो रहा है गुरु-शिष्य सम्बन्धी पवित्रता को ग्रहण लगता जा रहा है। उनके विचार नई चेतना पैदा कर सकते हैं। उन्होंने 1962 में, जब वह राष्ट्रपति बने थे तब कुछ शिष्यों और प्रशंसकों के कहने पर ही उन्होंने कहा था कि ''मेरे जन्मदिन को शिक्षक दिवस के रूप में मनाने से मैं अपने आप को गौरवान्वित महसूस करूंगा।'' तब से लेकर आज तक 5 सितम्बर सारे देश में 'शिक्षक दिवस' के रूप में मनाया जा रहा है क्योंकि उनका विचार था कि शिक्षा के द्वारा ही हम समाज की बुराईयों को मिटा सकते हैं। वे कहा करते थे कि मात्र जानकारियां देना ही शिक्षा का उद्देश्य नहीं है। आधुनिक युग में तकनीकी जानकारी महत्त्वपूर्ण भी है परन्तु शिक्षा का लक्ष्य ज्ञान के प्रति समर्पण की भावना और निरन्तर सीखते रहने की प्रवृत्ति है। ये व्यक्ति को ज्ञान और कौशल दोनों प्रदान करती है। इनका जीवन में उपयोग करने से ये हमारे मार्ग प्रशस्त करती है। करुणा प्रेम और श्रेष्ठ परम्पराओं का विकास भी शिक्षा का उद्देश्य है परन्तु ये तब तक पूर्ण नहीं होती जब तक शिक्षा नैतिक मूल्यों पर आधारित न हो।

उनका भी मानना था कि ''धर्म के बिना इंसान लगाम के बिना घोड़े की तरह है।'' शिक्षा उसे मानव बनाती है परन्तु यदि मानव दानव बन जाता है तो ये उसकी हार है। यदि मानव महामानव बन जाता है तो ये उसका चमत्कार है। यदि मनुष्य मानव बन जाता है तो ये उसकी जीत है। सच्चा धर्म वही है जो हमें भय पर विजय पाना सिखाता है।

वास्तव में शिक्षा वह है जो हमें अनुशासन और आत्मनियन्त्रण सिखाती है। चरित्र का निर्माण करती है। सच्चा ज्ञान प्रदान करती है। हम ये कह सकते हैं कि शिक्षा जीवन की धड़कन है। हमारी शिक्षा प्रणाली को पवित्र सोच की आवश्यकता है। ये तभी संभव है जब बच्चों को प्रारम्भ से ही नैतिक शिक्षा पढ़ाई जाए। नैतिक शिक्षा के अभाव में हमारे विद्यार्थी कभी भी श्रेष्ठ नागरिक नहीं बन सकते। मनुष्य प्रकृति से ही आध्यात्मिक है आवश्यकता है। उसे अनुभव करवाने की, ये अनुभव केवल नैतिक शिक्षा द्वारा ही सम्भव है। नैतिक शिक्षा के बिना सामाजिक मूल्यों को भी नहीं समझा जा सकता। शिक्षा का सिद्धान्त आदर्शों और मूल्यों का सिद्धान्त है जिसके द्वारा हम अपने जीवन को सुरक्षित आधार प्रदान कर सकते हैं। डा. राधाकृष्णन का विचार बिल्कुल सत्य है कि ''मस्तिष्क के स्तर को विकसित करना ही शिक्षा का सार्वभौमिक उद्देश्य है। यदि संसार को नैतिक पतन से बचाना है तो मूल्यों पर आधारित शिक्षा अनिवार्य है।''

आर्य समाज माडल टाऊन का वार्षिक उत्सव

आर्य समाज मॉडल टाऊन जालन्धर का वार्षिक उत्सव दिनांक 16 नवम्बर सोमवार से 22 नवम्बर 2015 रविवार तक बड़े उत्साहपूर्वक मनाया जा रहा है। इस अवसर पर आर्य जगत् के उच्चकोटि के विद्वान् आचार्य डा. प्रमोद जी दयानन्द ब्रह्म महाविद्यालय हिसार के प्रवचन तथा श्री प्रताप आर्य उत्तर प्रदेश के भजन होंगे। आप सभी सपरिवार इष्ट मित्रों सहित इस कार्यक्रम में उपस्थित होकर कार्यक्रम की शोभा बढ़ाएं। **-अजय महाजन मन्त्री आर्य समाज**

महर्षि दयानन्द मठ जालन्धर का वार्षिक उत्सव

महर्षि दयानन्द मठ वेद मन्दिर ढन्न मोहल्ला जालन्धर का वार्षिक उत्सव दिनांक 2 नवम्बर सोमवार से 8 नवम्बर 2015 रविवारतक समारोहपूर्वक मनाया जा रहा है। इस अवसर पर आर्य जगत् के मूर्धन्य विद्वान् महात्मा चैतन्यमुनि जी के प्रवचन व माता सत्याप्रिया यति जी तथा श्री राजेश अमर प्रेमी जी के भजन होंगे। इस उत्सव में बहुत से उच्चकोटि के विद्वान् तथा गणमान्य व्यक्तित्व पधार रहे हैं। आपसे प्रार्थना है कि सपरिवार कार्यक्रम में पधार कर पुण्य के भागी बनें। **-कुन्दन लाल अग्रवाल प्रधान प्रबन्धक समिति मठ**

आर्य समाज अड्डा होशियारपुर का वार्षिक उत्सव

आर्य समाज जालन्धर अड्डा होशियारपुर जालन्धर का वार्षिक उत्सव दिनांक 2-11-2015 सोमवार से दिनांक 8-11-2015 रविवार तक बड़ी धूमधाम से मनाया जा रहा है। इस अवसर पर आर्य जगत के उच्चकोटि के वैदिक प्रवक्ता आचार्य राजू जी वैज्ञानिक के प्रवचन तथा श्री अरूण वेदालंकार भजनोपदेशक आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के भजन होंगे। मुख्य कार्यक्रम 8 नवम्बर रविवार को होगा। आप सभी महानुभावों से प्रार्थना है कि सपरिवार इस कार्यक्रम में पधार कर उत्सव की शोभा को बढ़ाएं तथा पुण्य के भागी बनें।

-विनोद सेठ प्रधान आर्य समाज अड्डा होशियारपुर

धर्मचर

-ले० प्रो. सुभाष वेदालंकार विज़िटिंग प्रोफेसर महर्षि दयानन्द सरस्वती विश्व विद्यालय, अजमेर

धर्मंचर वाक्य बहुत प्रसिद्ध है। तैत्तिरीय उपनिषद् की शिक्षावल्ली में प्रथम वाक्य यही है। प्राचीन भारत में शिक्षा प्राप्ति के उपरान्त स्नातक जीवन के संग्राम में उतरता है, उससे पूर्व आचार्य द्वारा अन्तिम उपदेश उक्त शिक्षा वल्ली का ही दिया जाता था। वाक्य का सीधा सरल सा अर्थ है धर्म का आचरण कर। धर्म शब्द देखने में छोटा है, अर्थ में वह गम्भीर भी है और व्यापक भी। यह शब्द जितने व्यापक अर्थों में समेटे हुए हैं, उन पर चिन्तन करना अनिवार्य है।

धर्म शब्द धृम् धारणे धातु से निष्पन्न होता है, जिसका अर्थ है, धारण करना। धर्म की महिमा, वेद, उपनिषद् आदि सभी धर्म ग्रन्थों में गाई गई है। किसी विद्वान का कथन है कि धर्म का रहस्य किसी गुफा में छिपा हुआ है।

वेदा विभिन्ना: स्मृतयो विभिन्ना
नैको मुनिर्मस्य वच: प्रमाणम्।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां
महाजनो येन गत: स पन्था:।।

अर्थात् धर्म के विषय में वेद विभिन्न विचार देते हैं, स्मृतियां भिन्न बातें कहती हैं, ऋषि मुनि अनेक हैं, किन्तु धर्म के विषय में उनके विचार भिन्न-भिन्न हैं। अत: एक भी मुनि ऐसा नहीं है जिसके धर्म विषयक वचन को प्रमाण माना जा सके। अत: धर्म का तत्त्व किसी गुफा में छिपा है। अन्तत: बड़े लोग महापुरुष (महाजन) जिस मार्ग से जाएं, जो मार्ग बताएं वहीं धर्म है। अथवा महान् जनसमूह जिस मार्ग पर चले, जिस तत्त्व को माने वही धर्म है। यानि महापुरुषों द्वारा बताई परिभाषाओं पर विचार करें, तो सहज भाव से, भगवान् राम, भगवान् कृष्ण, भगवान् बुद्ध, भगवान् महावीर, महर्षि दयानन्द सरस्वती जो महापुरुष हैं जिन्होंने धर्म का प्रवर्तन किया। वे सभी युगपुरुष हैं।

पुरुषोत्तम राम के दो रूप सामने आते हैं, एक धार्मिक रूप, दूसरा राजनैतिक रूप। राम के लिए रामायण में लिखा गया कि राम साक्षात् धर्म का रूप धारण करने वाले, अर्थात् धर्मरूप शरीर के धारक हैं राम-'रामो विग्रहवान् धर्म:।'

राम स्वयं किस धर्म के अनुयायी थे, यह चिन्तन, मनन का विषय है। आज असंख्य नर-नारी राम की पूजा करते हैं। राम के नाम का जप करते हैं। राम की पूजा का प्रारम्भ महाभारत युद्ध के सैंकड़ों वर्षों बाद हुआ। उनको श्रद्धालु भक्तों ने ईश्वर का अवतार मान लिया। राम के विषय में कहा गया है-'सोऽध्यैष्ठ वेदान् त्रिदशानयष्ट' अर्थात् राम ने चारों वेदों का अध्ययन किया था और उन्होंने यजुर्वेद में प्रतिपादित 30 प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान किया था। राम के जीवन पर दृष्टि डालते हैं तो वे किशोरावस्था से ही यज्ञ की रक्षा में प्रवृत्त दिखाई देते हैं। जब राम को वनवास दिया गया तो उन्हें जोर देकर कहा गया कि-'दण्डकारण्ये वस' हे राम, तू जंगल में जा और दण्डकारण्य में बस जा, वहीं रह। ऐसा क्यों कहा गया यह विचारणीय है। वस्तुत: उन दिनों दशरथ राज्य बहुत दूर तक फैला हुआ था। दण्डकारण्य उस राज्य का अभिन्न अंग था। किन्तु दुर्भाग्य से राक्षस, पापी, दस्युगण, दण्डकारण्य में अतिक्रमण करते जा रहे थे। शनै-शनै: उन्होंने वन के बड़े भाग पर अधिकार कर लिया था।

ऋषि-मुनि दण्डकारण्य में बड़ी संख्या में थे। वे यज्ञ तप आदि करके, दशरथ के राज्य को वर्षा, धर्म आदि की दृष्टि से सम्पन्न कर रहे थे। राक्षस-दस्यु यज्ञों में विघ्न डालते थे। कैकेयी और दशरथ को यह विश्वास था कि केवल राम ही राक्षसों से वनों, उनके यज्ञ, तप करने वाले ऋषियों और दशरथ के राज्य की रक्षा कर सकते थे। अत: राम को दण्डकारण्य में रहने का आदेश दिया गया।

किशोरावस्था में भी राम और लक्ष्मण को ऋषि के साथ यज्ञ की रक्षार्थ भेजा गया था। राम के पिता दशरथ, उनके पिता अज, उनके पिता रघु और रघु के पिता दिलीप, सभी वैदिक धर्म के अनुयायी थे और धार्मिक अनुष्ठान के अन्तर्गत वे वेदोक्त यज्ञ ही करते थे। दिलीप, रघु और राम ने अश्वमेध यज्ञ भी किया था। सो राम यज्ञ करते थे, प्रजाजनों से भी यज्ञ करवाते थे और आजन्म यज्ञ की रक्षा करते रहे। अत: राम की दृष्टि में वेद पढ़ना पढ़ाना और यज्ञ करना कराना ही धर्म था।

योगीराज भगवान कृष्ण भी वेदों के धुरन्धर विद्वान थे। गुरु संदीपन के आश्रम में रहकर कृष्ण और सुदामा ने वेदाध्ययन किया, आश्रम में प्रतिदिन यज्ञ होता था। भगवान राम और कृष्ण ने माता-पिता और गुरुजनों से यज्ञ के संस्कार लिए थे।

गीता में भगवान् कृष्ण ने यज्ञ के विषय में बहुत कम किन्तु नपे-तुले शब्दों में गम्भीर उपदेश दिया। गागर में सागर भरने का उन्होंने काम किया। एक पद्य में वे कहते हैं-

सहयज्ञा: प्रजा: सृष्ट्वा पुरोवाच प्रजापति:।
इनेन प्रसविष्यध्वमेष वस्तिवष्ट काम धुक।

अर्थात् सृष्टि के प्रारम्भ में प्रजाओं को उत्पन्न करके प्रजापति ने प्रजाओं को कहा इस यज्ञ को सम्पन्न करो, यह तुम्हारी समस्त कामनाओं को पूर्ण करेगा।

एक अन्य पद्य में कृष्ण उपदेश करते हैं-

कर्म ब्रह्मोद्भवं विद्धि ब्रह्माक्षर समुद्भ्वं।
तस्मात् सर्वगतं ब्रह्मं नित्यं यज्ञे प्रतिष्ठितम्।

अर्थात् कर्म ब्रह्म (वेद) से निकला, वेद अक्षर ब्रह्म (परमेश्वर) से निकले और वह ब्रह्म यज्ञ में प्रतिष्ठितम् है। इस प्रकार कृष्ण की दृष्टि में भी धर्म तत्त्व यज्ञ में समाहित है, अत: यज्ञ ही धर्म है। उस यज्ञ के अनेक रूप गीता में बताए गए हैं।

धर्मशास्त्रों में धर्म की बहुविध व्याख्या है। भगवान् मनु लिखते हैं कि वेद ही समस्त धर्मों का मूल है 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम्' जो धर्म के वास्तविक स्वरूप को जानना चाहते हैं, उनके लिए परम प्रमाण श्रुति अर्थात् वेद ही हैं।

धर्मं जिज्ञासमानानां प्रमाणं परमं श्रुति:। मनु ने अनेक स्थलों पर धर्म की परिभाषा दी और उसके विस्तृत स्वरूप पर प्रकाश डाला। एक पद्य में उन्होंने आचार को धर्म कहा-'आचार: प्रथमो धर्म: श्रुत्युक्त: स्मार्त एव च' अर्थात् वेद तथा स्मृति ग्रन्थों में प्रतिपादित आचार (सदाचार) ही परम धर्म है। इसी की पुनरावृत्ति उन्होंने निम्न पद्य में की-

श्रुति: स्मृति: सदाचार: स्वस्य च प्रियमात्मन:।
एतच्चतुर्विधं प्राहु: साक्षात्धर्मस्य लक्षणम्।।

अर्थात् वेद, धर्मशास्त्र, सदाचार और जो स्वयं को प्रिय लगे वैसा आचरण दूसरों के साथ करना, यह चार प्रकार का धर्म है। एक स्थल पर मनु महाराज ने धर्म के दस लक्षण किये-

धृति: क्षमा दमोऽस्तेयं शौच-मिन्द्रिय निग्रह:।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्म्मलक्षणम्।।

अर्थात् धैर्य, क्षमा, दम, अस्तेय (मन, वचन, कर्म से चोरी न करना) शौच (पवित्रता), इन्द्रियों पर निग्रह (वश में करना), बुद्धिपूर्वक कार्य करना, विद्या, सत्य और अक्रोध (क्रोध न करना) यह दशविध धर्म का लक्षण है।

बौद्ध धर्म और जैन धर्म में यम नियम के पालन के साथ अहिंसा को धर्म बताया गया है। 'अहिंसा परमो धर्म:।' मन वचन कर्म से हिंसा न करना ही अहिंसा है। इस अहिंसा धर्म का मूल स्रोत वेद में है। वहां लिखा है, 'मा हिन्स्यात् सर्व भूतानि' अर्थात् किसी भी जीव की हिंसा मत करो, 'गां मा हिंसी: पशुं मा हिंसी' अर्थात् गौ (गोधन) अथवा वाणी, किसी की वाणी की हिंसा मत करो, किसी पशु की हिंसा मत करो। हिंसा और अहिंसा दोनों पदों के अनेक अर्थ व व्याख्याएं हैं। कहीं-कहीं पर हिंसा ही धर्म बन जाता है। जैसे युद्ध में एक सेना दूसरी सेना को मारती है, वह हिंसा होकर भी हिंसा नहीं है। वह हिंसा भी अहिंसा है, जिससे स्वयं का भी हित हो और समाज एवं राष्ट्र का भी। भगवान् राम ने ऋषियों और उनके द्वारा संचालित यज्ञ की रक्षा के लिए राक्षसों और आततायियों की हिंसा की, सीता का हरण करने वाले रावण को और असंख्य राक्षसों को मारा, धरती से आतंक का राज्य समाप्त किया। वहां हिंसा, सबके लिए हितकारी सिद्ध हुई, अत: वह हिंसा होकर भी अहिंसा है।

इसी प्रकार सत्य को महान् धर्म कहा गया है। 'नहि सत्यात् परो धर्म:' सत्य से श्रेष्ठ कोई धर्म नहीं है। परन्तु सत्य की परिभाषा भी भिन्न-भिन्न है। मन, वचन, कर्म से सत्याचरण करना धर्म है, परन्तु यदि अधर्म, आत्माचार, अत्याचारी, हत्यारा से रक्षा करने के लिए यदि असत्य बोला जाए तो वह भी सत्याचरण ही माना जाता है।

(शेष पृष्ठ 7 पर)

कर्मयोगी : पूज्य स्वामी सुमेधानन्द जी

-ले० महात्मा चैतन्यमुनि महर्षि दयानन्द धाम महादेव, सुन्दरनगर

पूज्य स्वामी सुमेधानन्द जी के निधन से आर्य जगत में जो स्थान रिक्त हुआ है उसका भर पाना असम्भव सा ही लगता है। स्वामी जी का जन्म 5 मई, 1937 में हुआ था तथा 5 अगस्त, 2015 को उन्होंने इस नश्वर देह का त्याग कर दिया। हमारा उनके साथ बहुत ही समीप का सम्बन्ध रहा है, बल्कि यदि कहें कि हमारे लिए वे किसी प्रकार के सदस्य जैसे थे तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। उन्होंने हमें अपने जीवन की पूरी कहानी अनेक बार सुनाई कि किस प्रकार उनके मन में वैराग्य के भाव पैदा हुए और यह गोपाल नामक युवा कहां-कहां, कैसे-कैसे अनेक कठिनाईयों का सामना करते हुए अन्ततः दयानन्द मठ दीनानगर में पहुंचा और वहां वे क्या-क्या कार्य करते थे....आदि। सन् 1970 में अपने जीवन के 33वें वर्ष में महर्षि दयानन्द बलिदान दिवस पर उन्होंने स्वामी सर्वानन्द जी से सन्यास ले लिया और उनकी इच्छा पूरी करने के लिए चम्बा के उस एकान्त तथा उबड़-खाबड़ स्थान पर पहुंचे जहां आज दयानन्द मठ चम्बा स्थित है। उन्होंने तथा आचार्य महावीर जी ने बहुत ही कठोर परिश्रम करके उस स्थान को स्मृद्धि प्रदान की है। मेरा सौभाग्य है कि मुझे आर्य प्रतिनिधि सभा में सबसे अधिक समय तक महामन्त्री के रूप में कार्य करने का सुअवसर प्राप्त हुआ है। आर्य वन्दना के सम्पादन से भी मैं लगभग 26 वर्ष तक निरन्तर जुड़ा रहा। इस दौरान अनेक प्रधानों के साथ कार्य करने का अवसर मिला तथा सभी का अपने-अपने ढंग से सभा को सहयोग रहा मगर स्वामी जी के साथ मुझे सबसे अधिक समय कार्य करने के लिए मिला है। उनमें कार्य करने की अद्भुत क्षमता ही नहीं थी बल्कि संगठन को किस प्रकार से मज़बूत किया जा सकता है। यह कला भी उनके पास विद्यमान थी। वे अपने अन्तिम समय तक अत्याधिक आशावादी दिखते थे, भले ही उन योजनाओं को वे किन्हीं कारणों से कार्यान्वित न कर पाएं हों मगर उनके पास एक स्पष्ट विजन था। जब उनकी अत्याधिक अस्वस्थता का पता चला तो मैं व सत्यप्रिया यति जी एक मई को उनसे मिलने चम्बा पहुंचे। उस समय भी उनमें वहीं उत्साह और उमंग दिखाई दी थी। हम देर रात तक अपने संस्मरणों को दोहराते रहे थे...भले ही वे वर्तमान सभाओं के स्तर व संगठनादि को लेकर अन्य विशुद्ध ऋषि भक्तों की तरह बहुत चिन्तित थे। मगर फिर भी बहुत आशान्वित भी थे कि कभी न कभी पुनः हमारा संगठन मजबूत होगा जब असली दयानन्दियों के हाथ में बागडोर आएगी...और भी उन्होंने उस दिन बहुत सी बातें कहीं थीं...

6 अगस्त को प्रातःकाल जब महावीर जी का फोन आया कि स्वामी जी गत रात लगभग पौने दस बजे चल बसे तो अपने कानों पर जैसे विश्वास नहीं हुआ मगर यह सत्य था कि स्वामी जी अब इस दुनिया में नहीं रहे... वे अधिकतम हमारे यहां ही ठहरते थे तथा उनके साथ इतने अधिक संस्मरण है कि यहां दे पाना असम्भव सा ही है...हां अपनी आत्मकथा में कुछ संस्मरणों को देने का प्रयास करूंगा। चम्बा में 8 अगस्त को आयोजित उनकी श्रद्धांजलि सभा में बोलने के लिए खड़ा हुआ तो उनके साथ बिताया समय एकदम आंखों के सामने उभर आया। स्वामी जी ने न केवल हिमाचल प्रदेश सभा के लिए बल्कि समूचे आर्य जगत् के लिए बहुत कार्य किया है। जिसके लिए उन्हें सदा ही स्मरण किया जाता रहेगा। आवश्यकता तो इस बात की है कि पुरानी पीढ़ी के आर्यों की तरह अपने स्वार्थों एवं एषणाओं से ऊपर उठकर मन, वचन व कर्म से अपने मिशन के लिए कार्य करें...उनके प्रति यही सच्ची श्रद्धांजलि होगी...

अध्यात्मवाद

-ले. कृष्ण चन्द्र गर्ग, 831 सैक्टर 10 पंचकूला, हरियाणा

आत्मा क्या है, परमात्मा क्या है, इन दोनों का आपस में सम्बन्ध क्या है-इस विषय का नाम अध्यात्मवाद है। आत्मा और परमात्मा दोनों ही भौतिक पदार्थ नहीं है। इन्हें आंख से देखा नहीं जा सकता, कान से सुना नहीं जा सकता, नाक से सूंघा नहीं जा सकता, जिहवा से चखा नहीं जा सकता, त्वचा से छुआ नहीं जा सकता।

परमात्मा एक है, अनेक नहीं। ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि उसी एक ईश्वर के नाम हैं। (एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति। ऋग्वेद-1-164,46) अर्थात् एक ही परमात्मा शक्ति को विद्वान लोग अनेक नामों से पुकारते हैं। संसार में जीवधारी प्राणी अनन्त हैं, इसलिए आत्माएं भी अनन्त हैं। न्यायदर्शन के अनुसार ज्ञान, प्रयत्न, इच्छा, द्वेष, सुख, दुख-ये छः गुण जिसमें हैं उसमें आत्मा है। ज्ञान और प्रयत्न आत्मा के स्वाभाविक गुण हैं, बाकी चार गुण इसमें शरीर के मेल से आते हैं। आत्मा की उपस्थिति के कारण ही यह शरीर प्रकाशित हैं, नहीं तो मुर्दा अप्रकाशित और अपवित्र है। यह संसार भी परमात्मा की विद्यमानता के कारण ही प्रकाशित है।

आत्मा और परमात्मा-दोनों ही अजन्मा व अनन्त हैं। ये न कभी पैदा होते हैं और न ही कभी मरते हैं, ये सदा रहते हैं। इनका बनाने वाला कोई नहीं है। आत्मा परमात्मा का अंश नहीं है। हर आत्मा एक अलग और स्वतन्त्र सत्ता है।

आत्मा अणु है, बेहद छोटी है। परमात्मा आकाश की तरह सर्वव्यापक है। आत्मा का ज्ञान सीमित है, थोड़ा है। परमात्मा सर्वज्ञ है, वह सब कुछ जानता है। जो कुछ हो चुका है और हो रहा है सब कुछ उसके संज्ञान में है। अन्तर्यामी होने से वह सभी के मनों में क्या है यह भी जानता है। आत्मा की शक्ति सीमित है, थोड़ी है, परन्तु परमात्मा सर्वशक्तिमान है। सृष्टि को बनाना, चलाना, प्रलय करना, आदि अपने सभी काम करने में वह समर्थ है। पीर, पैगम्बर, अवतार आदि नाम से कोई एजैंट या बिचौलिए उसने नहीं रखे हैं। ईश्वर सभी काम अपने अन्दर से करता है क्योंकि उसके बाहर कुछ भी नहीं है। ईश्वर जो भी करता है वह हाथ-पैर आदि से नहीं करता क्योंकि उसके ये अंग है ही नहीं। वह सब कुछ इच्छा मात्र से है।

ईश्वर आनन्दस्वरूप है। वह सदा एक रस आनन्द में रहता है। वह किसी से राग-द्वेष नहीं करता। वह काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकार से परे है। ईश्वर की उपासना करने से अर्थात् उसके समीप जाने से आनन्द प्राप्त होता है जैसे सर्दी में आग के पास जाने से सुख मिलता है। ईश्वर निराकार है। उसे शुद्ध मन से जाना जा सकता है जैसे हम सुख-दुख मन में अनुभव करते हैं।

यह आत्मा जब मनुष्य शरीर में होती है तब वह कार्य करने में स्वतन्त्र रहती है। उस समय किए कार्यों के अनुसार ही उसे परमात्मा सुख, दुख व अगला जन्म देता है। दूसरी योनियां या तो किसी दूसरे के आदेश पर चलती है या स्वभाव से काम करती हैं। उनमें विचार शक्ति नहीं होती। इसलिए उन योनियों में की क्रियाओं का उन्हें अच्छा या बुरा फल नहीं मिलता। वे केवल भोग योनियां हैं जो पहले किए कर्मों का फल भोग रही हैं। मनुष्य योनि में कर्म और भोग दोनों का मिश्रण है। मनुष्य स्वतन्त्र रूप से कर्म भी करता है और कर्म फल भी भोगता है।

मैं आत्मा हूं, शरीर नहीं हूं। शरीर मेरा संसार में व्यवहार करने का साधन है। कर्त्ता और भोक्ता आत्मा है। सुख-दुख आत्मा को होता है।

जीवात्मा न स्त्रीलिंग है, न पुल्लिंग है और न ही नपुंसक है। यह जैसे जैसा शरीर पता है, वैसे वैसा कहा जाता है। (श्वेताश्वतर उपनिषद)

ईश्वर की पूजा ऐसे नहीं की जाती जैसे मनुष्यों की पूजा अर्थात् सेवा सत्कार किया जाता है। ईश्वर की आज्ञा का पालन अर्थात् सत्य और न्याय का आचरण ही ईश्वर की पूजा है।

कठ उपनिषद में मनुष्य शरीर की तुलना घोड़ा गाड़ी से की गई है। इसमें आत्मा गाड़ी का मालिक अर्थात् सवार है। बुद्धि-सारती अर्थात् कोचवान है, मन लगाम है, इन्द्रियां घोड़े हैं। इन्द्रियों के विषय वे मार्ग हैं जिन पर इन्द्रियां रूपी घोड़े दौड़ते हैं। आत्मा रूपी सवार अपने लक्ष्य तक तभी पहुंचेगा जब बुद्धि रूपी सारथी मन रूपी लगाम को अपने वश में रख कर इन्द्रियों रूपी घोड़ों को सन्मार्ग पर चलाएगा।

उपनिषद में घोड़ा गाड़ी को रथ कहा जाता है और रथ पर सवार को रथी। मनुष्य शरीर में आत्मा रथी है। जब आत्मा निकल जाती है तब शरीर अरथी रह जाता है। परमात्मा हम सबका माता, पिता और मित्र है। वह सब प्राणियों का भला चाहता है। जब मनुष्य कोई अच्छा काम करने लगता है तो उसे आनन्द, उत्साह, निर्भयता महसूस होती है। वह परमात्मा की तरफ से होता है और जब वह कोई बुरा काम करने लगता है तब उसे भय, शंका, लज्जा महसूस होती है। वह भी परमात्मा की तरफ से ही होता है।

श्री जगत वर्मा जी को पितृ शोक

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के भजनोपदेशक श्री जगत वर्मा जी के पूज्य पिता श्री शिवपाल जी का 94 वर्ष की आयु में दिनांक 10 अक्तूबर 2015 को लालडू मंडी में देहान्त हो गया। पूज्य श्री शिवपाल जी का कार्यक्षेत्र भाखड़ा नंगल व तलवाड़ा होने के कारण उन्होंने इन क्षेत्रों में आर्य समाज का बहुत कार्य किया। पूज्य शिवपाल जी आर्य सिद्धान्तों के बहुत पक्के थे। यही कारण था कि उनके सम्पर्क में आने वाले महानुभाव आर्य विचारों से ओत-प्रोत हो जाते थे। उनका अन्तिम संस्कार उनके पौत्र श्री संजीव कुमार जी वेदालंकार (पानीपत) ने पूर्ण वैदिक रीति रिवाज से सम्पन्न करवाया। उनकी अन्तिम शोक सभा 25 अक्तूबर 2015 को 1.00 बजे से 3.00 बजे तक चण्डीगढ़ अम्बाला जी. टी. रोड स्थित लालडू मंडी में होगी।

महात्मा चैतन्यमुनि जी को 'हिमोत्कर्ष हिमाचलश्री' पुरस्कार

मूलत: हिमाचल प्रदेश निवासी वरिष्ठ साहित्यकार एवं वैदिक प्रवक्ता व आनन्दधाम आश्रम उधमपुर, जम्मू कश्मीर के मुख्य संरक्षक व निदेशक, गुरुकुल करतारपुर के संरक्षक तथा अन्य अनेक आश्रमों, साहित्यिक संस्थाओं के संचालक एवं संरक्षक महात्मा चैतन्यमुनि जी को 'हिमोत्कर्ष साहित्य संस्कृति एवं जन कल्याण परिषद्' की ओर से उनके द्वारा साहित्य एवं समाज कल्याण के क्षेत्र में किए गए कार्य हेतु 'हिमोत्कर्ष हिमाचलश्री सम्मान' से सम्मानित किया गया। उल्लेखनीय है कि महात्मा जी की अब तक लगभग पचास साहित्यिक एवं आध्यात्मिक पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं तथा इन्हें अब तक साहित्य अकादमी सहित अन्य पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है। इन्होंने उपन्यास, कहानी, लघुकथा, गीत, गज़ल, कविता, नाटक तथा निबन्ध आदि साहित्य की प्रत्येक विधा पर देश को उत्तम साहित्य प्रदान किया है। समाज सेवा के लिए भी इनका जीवन सदा ही समर्पित रहा है। हिमाचल प्रदेश आर्य प्रतिनिधि सभा के आर्यवीर संचालक, वेद प्रचार, अधिष्ठाता, महामन्त्री तथा वरिष्ठ उपाध्यक्ष व कार्यकारी अध्यक्ष के रूप में इन्होंने अभूतपूर्व सेवा की है जिसके लिए इन्हें सभा की ओर से सम्मानित भी किया गया था। सभा की पत्रिका आर्य वन्दना के सम्पादन से ये बीस वर्षों से जुड़े रहे। पत्रिका आरम्भ करने तथा प्रतिष्ठित करने में इनका अत्याधिक सहयोग रहा है। इन्होंने वैदिक वशिष्ठ पत्रिका, शब्द, नवनीत भारती तथा गूंजती घाटियां आदि पत्रिकाओं में भी सम्पादन सहयोग प्रदान किया है। ये एक प्रतिष्ठित लेखक ही नहीं बल्कि प्रबुद्ध वैदिक प्रवक्ता भी है जिन्होंने मानव मूल्यों की स्थापना हेतु देश-विदेश में वैदिक संस्कृति की सार्वभौमिक विचारधारा को अत्याधिक प्रभावशाली ढंग से प्रचारित एवं प्रसारित किया है। -प्रबन्धक

अबोहर में वेद प्रचार

आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब ने वैदिक धर्म के प्रचार हेतु, आचार्य नारायण सिंह जी को तारीख 8.10.2015 को आर्य समाज अबोहर ने आचार्य जी का सत्संग इस प्रकार रखें। तारीख 9.10.2015 को प्रात: 9.30 बजे बी. एल. वैदिक गर्ल्ज स्कूल अबोहर और दोपहर 12 बजे महर्षि दयानन्द बी. एड. कालेज में सत्संग हुआ। तारीख 10.10.2015 को विकास मॉडल स्कूल नई अबादी अबोहर में सत्संग हुआ और तारीख 11.10.2015 को सुबह और शाम आर्य समाज अबोहर की पवित्र यज्ञशाला में सत्संग हुआ। इस प्रकार आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब और आर्य समाज अबोहर ने मिलकर वैदिक धर्म का प्रचार किया। -प्रधान सोहनलाल सेतिया

पृष्ठ 5 का शेष-धर्मचर.....

यदि कोई हत्यारा गौ की हत्या के लिए उसके पीछे दौड़ रहा है, गौ हमारे सामने से पूर्व दिशा में गई है। यदि हम उसकी रक्षा के लिए गौ का पश्चिम दिशा में जाना बताते हैं तो वस्तुत: वह असत्य होकर भी सत्य ही है। क्योंकि 'सत्सु त्रायते इति सत्यम् अर्थात् जो सदाचरण सज्जनों में रक्षा करे वह आचरण या व्यवहार ही सत्य है। दर्शनशास्त्र में धर्म की परिभाषा देते हुए दो वाक्य आए हैं-1. यतोऽभ्युदय नि:श्रेयस सिद्धि: स धर्म:। 2. धर्मस्य त्रय: स्कन्धा: यज्ञ: दानं तपश्चेति। अर्थात् जिसके द्वारा अभ्युदय (इह लौकिक, भौतिक उन्नति) और नि:श्रेयस् (पारलौकिक अर्थात् आध्यात्मिक उन्नति) की सिद्धि हो वह धर्म है। अर्थात् धर्म वह है जिससे जीवन में सर्वविध उन्नति हो।

उस धर्म के तीन रूप हैं, यज्ञ, दान और तप। यज्ञ से अभिप्राय: है श्रेष्ठतम कर्म, यज्ञादि में आहुति देना, अग्निहोत्र करना, ध्यान, स्वाध्याय आदि श्रेष्ठ काम भी यज्ञ है। यज्ञ शब्द यज् धातु से बना है जिसके तीन अर्थ है देव पूजा संगति करण और दान। देव पांच हैं, चार धरती के देवता, जिनके लिए तैतिरीय उपनिषद् में लिखा है, 'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्य देवो भव, अतिथि देवो भव। इन देवों का भी अधिदेव परमेश्वर है। उसकी पूजा उपासना मंत्रपाठ के साथ अग्निहोत्र द्वारा की जाती है। संगतीकरण का अर्थ है, मिलजुल कर एक सूत्र में बंधकर राष्ट्र हित में कार्य करना। इसलिए वेद का आदेश है संगच्छध्वम्, संवदध्वम्, समानो मन्त्र: समिति: समानी, समानं मन: सह चित्तमेषाम्, मिलकर चलो, मिलकर बोलो, आपके मन्त्र (विचार मन्त्र) समान हों, समिति समान हों, मन समान हों। विद्वानों को भी देवता कहा गया है, 'विद्वासों वै देवा:' उनकी संगति करना भी देवपूजा है। दान शब्द बहुत महत्त्वपूर्ण है। पुराणों के अनुसार धर्मों में दान धर्म ही श्रेष्ठ है। 'सर्वेषामेव धर्माणां दानधर्मे विशष्यिते।' ऋग्वेद में लिखा है उस व्यक्ति का धन और अन्न व्यर्थ है जिसका वह वितरण, दान नहीं करता। वस्तुत: अदानी (दान न देने वाला) अपनी मृत्यु का ही आह्वान करता है। जो अकेला खाता है, वह पाप की खाता है (भोगता है)। केवलाघो भवति केवलादि:, गीता भी कहती है कि 'भुञ्जते ते त्वघं पापा: ये पचन्त्यात्म कारणात्' जो व्यक्ति स्वयं के लिए जीते हैं, अकेले ही अपने अन्न, धन का भोग करते हैं, वे वस्तुत: पाप के भागी हैं।

तप का अर्थ है तपना, तपस्या करना, सहन करना, असहनशील न बनना। असहनशीलता अनेक विपत्तियों को जन्म देती है। सहनशीलता एवं क्षमा की वृत्ति से अनेक अपराधों से बचा जा सकता है।

इस प्रकार विभिन्न शास्त्रों के अनुसार धर्म के अनेक रूप हैं। आचार, अहिंसा, सत्याचरण, धृति, क्षमा, यज्ञ, दान, तप आदि सबको धर्म कहा गया है। गीता में कर्म को धर्म कहा गया है। क्षत्रिय का परम धर्म प्रजा रक्षण है, 'क्षत्रियस्य परो धर्म: प्रजानामेव पालनम्।' धर्म की इतनी परिभाषाओं को देखते हुए व्यास जी ने लिखा, 'धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्', धर्म का तत्त्व गुफा में छिपा पड़ा है। उक्त परिभाषाओं को देखते हुए व्यास जी ने लिखा ह, 'धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायाम्', धर्म का तत्त्व गुफा में छिपा पड़ा है। उक्त परिभाषाओं को देखने के उपरान्त धर्म के विषय में असमंजस की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। समस्त परिभाषाओं का समन्वय महाभारत की धर्म विषयक परिभाषा में हो जाता है। 'धारणात् धर्म इत्याहु' अर्थात् जिसे धारण किया जाए, वही धर्म कहलाता है। धारण उसका किया जाता है जिससे स्वयं का तथा औरों का हित हो। धारण करने का अर्थ है, स्वीकार करना, आचरण करना, जीवन में उतारना। इस दृष्टि से वे सभी शाश्वत तत्त्व जिन्हें वेद में 'ध्रुवेण धर्मणा' पद के द्वारा बताया गया अथवा पुरुष सूक्त में जिन्हें 'तानि धर्माणि प्रभामान्यासन' सृष्टि में वे शाश्वत सिद्धान्त, नियम तत्त्व प्रमुख थे इत्यादि को बताया गया है।

इसी दृष्टि से अहिंसा, सत्य, सदाचार, यज्ञ, दान, तप, धृति, क्षमा, अस्तेय, अक्रोध आदि ऐसे शाश्वत तत्त्व हैं, स्थिर सिद्धान्त हैं, जिनके धारण करने, जिन्हें जीवन का अंग बनाने से, जिन्हें अपना लेने से, जिनका आचरण करने से मनुष्य का कल्याण हो सके वही धर्म है। ये तत्त्व सर्वमान्य हैं। ईसा की पूजा, मुहम्मद की पूजा और नानक आदि भगवान राम और कृष्ण की पूजा आदि में मतभेद हो सकते हैं। परन्तु उक्त तत्त्वों को जीवन में ग्रहण करने से स्वयं का एवं अन्यों का हित है इसमें तो संदेह की स्थिति नहीं है। अत: स्वहित और परहित के लिए शाश्वत तत्त्वों का धारण करना, उन्हें स्वीकार करना ही धर्म है, यही सर्वमान्य मत है।

वेदवाणी

अहो आश्चर्य! पानी में मीन प्यासी

अपां मध्ये तस्थिवांसं तृष्णाविदज्जरितारम्।
मृळा सुक्षत्र मृळय।। –ऋ० ७।८९।४
ऋषिः-वसिष्ठः।। **देवता**-वरुणः।। **छन्दः**-आर्षीगायत्री।।

विनय-हे प्रभो! क्या तुम्हें मेरी दशा पर तरस नहीं आता ? सन्त लोग मेरे जैसों पर हंस रहे हैं और कह रहे हैं, ''मुझे देखत आवत हाँसी, पानी में मीन प्यासी।'' सचमुच मैं तो पानी के बीच में बैठा हुआ भी प्यास से व्याकुल हो रहा हूं। तेरे करुणा-सागर में रहता हुआ भी मैं दुःखी हूं, सन्तप्त हूं। जब तूने मेरी इच्छाओं को पूरा करने के लिए ही यह संसार ऐश्वर्यों से भर रखा है और तुम प्रति क्षण मेरी एक-एक आवश्यकता को बड़ी सावधानी से ठीक-ठीक स्वयं पूरा कर रहे हो, तब मुझे अपने में कोई इच्छा या कामना रखने की क्या आवश्यकता है ? परन्तु फिर भी न जाने क्यों मुझे अनेक तृष्णाएं लग रही हैं, सैंकड़ों कामनाएं मुझे जला रही हैं। हे नाथ! मैं क्या करूं ? इस विषम दशा से मेरा कौन उद्धार करेगा ? हे उत्तम शक्ति वाले! मैं इतना अशक्त हो गया हूं-इतना निर्बल हूं कि सामने भरे पड़े हुए पानी से भी अपनी प्यास बुझा लेने में असमर्थ हूं। मैं जानता हूं कि मुझे क्या करना चाहिए, किन्तु कमज़ोरी इतनी है कि उसे मैं कर नहीं सकता। हे सच्चिदानन्दरूप! मैं देखता हूं कि आत्मा में सचमुच अपरिमित बल है, तो भी मैं उस बल को ग्रहण नहीं कर सकता। मैं जानता हूं कि मेरी आत्मा अमूल्य ज्ञान रत्नों का भण्डार है, परन्तु मैं इस रत्नाकर के बीच में बैठा हुआ भी ज्ञान का भिखारी बना हुआ हूं। मेरे आनन्दमय प्रभो! मैं जानता हूं कि तुम सर्वदा, सर्वत्र हो, सदा मेरे साथ हो, पर फिर भी मैं कभी आनन्द नहीं प्राप्त कर पाता। अरे, मैं तो अमृत के सागर में पड़ा मरा जा रहा हूं। तेरी अमृतमय गोद में बैठा हुआ, स्वयं अमृतत्व होता हुआ बार-बार मौत के मुंह में जा रहा हूं। हे नाथ! अब तो मुझ पर दया करो। मुझे इस विषम अवस्था से उबार लो। अब तो मुझे सुखी कर दो। हे परमकारुणिक! हे सुक्षत्र! मुझे इतना क्षत्र-इतना बल तो दे दो कि मैं सामने भरे पड़े जल का सेवन तो कर सकूं, इससे अपनी तृष्णा शान्त करके सुखी तो हो सकूं। हे शक्ति वाले! जिस तूने मुझे इस पानी के सागर में रखा है, वही तू मुझे इसके पीने का सामर्थ्य भी प्रदान कर, जिससे मैं अपनी प्यास बुझाकर सुखी हो सकूं। हे नाथ! मुझे सुखी कर, सुखी कर, अब तो अपनी शक्ति देकर मुझे सुखी कर! यह तेरा स्तोता कब से चिल्ला रहा है, अब तो इसे सुखी कर दे!

–वैदिक विनय से साभार

सदाचार का हमें सदैव चिन्तन करते हुए उस पर आचरण करना चाहिए

आर्य समाज खलासी लाईन, सहारनपुर के प्रांगण में वेद प्रचार सप्ताह श्रावणी महोत्सव पर यज्ञ हुआ। यज्ञ वैदिक विद्वान आचार्य अर्जुन देव वर्णी जी के पुरोहित्य में सम्पन्न हुआ। यज्ञ के उपरांत वैदिक भजनोपदेशक श्री ऋषिपाल पथिक जी ने कहा सत्यार्थ प्रकाश 377 ग्रन्थों का निचोड़ है। भारत में 7000 गुरुकुल थे और अब घटते-घटते मात्र 500 गुरुकुल रह गए हैं जिसमें भी कई जर्जर अवस्था में हैं। यह हमारी गिरावट व बिगाड़ का प्रमाण हैं। पत्नी का कर्त्तव्य है पति के साथ परछाई बनकर रहना। सुख में, दुख में साथ रहना व एक दूसरे का साथ देना। पर आज क्या हो रहा है आप देख सकते हो। हमें वेदों की ओर लौटना होगा तभी हमारा विकास होगा। शिक्षा की मैकाले पद्धति हमारी गुरुकुलीय पद्धति पर हावी हो गई है। हम दिशाहीन हो गए हैं जिसे हम नहीं समझ रहे हैं। हमें अपनी दिशा सही करनी होगी तभी हमारी दशा सही होगी। उन्होंने कहा त्याग की भावना जिसमें होती है वही महान होता है। उन्होंने भजनों के माध्यम से कहा अकेला ही आया, अकेला चलेगा, नहीं तेरा साथ में सहेला चलेगा, न राजा रहेगा न रानी रहेगी, किताबों में इसकी कहानी रहेगी। बुढ़ापे में चढ़कर झमेला चलेगा, खजाने गड़े थे, गड़े ही रहेंगे। करोड़पति की कब्र में न धेला चलेगा। प्रभु भक्ति व सदाचार ही सिर्फ तेरे साथ चलेगा। तत्पश्चात् वैदिक विद्वान आचार्य अर्जुन देव वर्णी जी ने अपने प्रवचन में कहा आत्मा परमात्मा का चिन्तन आध्यात्मिक चिन्तन लौकिक जगत में साधक है, बाधक नहीं। लौकिक शक्तियों को ग्रहण करने में अनैतिकता से ही जीवन में बिगाड़ व गिरावट आई है। सदाचार का हमें सदैव चिन्तन करते हुए उस पर आचरण करना चाहिए। उन्होंने कहा प्रातःकाल एक घण्टा व सायंकाल एक घण्टा उपासना ज़रूर करें। उन्होंने कहा विद्या का प्रचार प्रसार नहीं होगा तो अविद्या बढ़ेगी ही, उन्होंने कहा जिसकी पूजा होनी चाहिए उसकी नहीं हो रही है और जिसकी नहीं होनी चाहिए उसकी हो रही है यही अविद्या है। विद्या ज्ञान से ही हम मिथ्या ज्ञान से बच सकते हैं। शांति ज्ञान विद्या में है, अज्ञान अविद्या में शांति नहीं है। उन्होंने कहा जैसे को जैसा मानना अविद्या है और जैसे को तैसा मानना विद्या है। मंच संचालन डा. राजवीर सिंह वर्मा जी ने किया। तत्पश्चात् शांतिपाठ के साथ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ। उपस्थिति निम्न रही। पार्थ गर्ग, प्रेम सागर, रघुवीर कौर, रविकांत राणा, सुरेश सेठी, शांति देवी, मीना वर्मा, रमेश राजा, रोशन लाल, रश्मि गर्ग, नरेन्द्र गर्ग, सुरेन्द्र कुमार यादव, मधु आर्या, शांति देवी, विजय कुमार गुप्ता, मूलचंद यादव, बारूराम शर्मा, सुमन गुप्ता, रमारानी आदि रहे।

गुरुकुल का आयुर्वेद महान
घर-घर में मिले रोगों से निदान

गुरुकुल च्यवनप्राश
सभी के लिए स्वादिष्ट, रुचिकर, पौष्टिक रसायन।

गुरुकुल पायोकिल
पायोरिया की आयुर्वेदिक औषधि
दांतों में खून रोके, मुंह की दुर्गन्ध दूर करे,
मसूड़ों के रोग, ढीले दांत ठीक करे।

गुरुकुल शतशिलाजीत सूर्यतापी
पुष्टीदायक, बलवर्धक
शरीर में नया खून और उत्साह का अनुभव

गुरुकुल ब्राह्मी रसायन
बुद्धिवर्धक, स्फूर्तिदायक, दिमागी कमजोरी दूर करे।

गुरुकुल मधुमेह नाशिनी गुटिका
मधुमेह एवं प्रत्येक प्रकार के प्रमेह में लाभदायक

गुरुकुल मधु
गुणवत्ता एवं ताज़गी के लिए

गुरुकुल चाय
खाँसी, जुकाम, इन्फ्लूएंजा व थकान में अत्यंत उपयोगी।

अन्य प्रमुख उत्पाद
गुरुकुल द्राक्षारिष्ठ
गुरुकुल रक्तशोधक
गुरुकुल अश्वगंधारिष्ट

गुरुकुल कांगड़ी फार्मेसी, हरिद्वार डाकघर : गुरुकुल कांगड़ी-249404, ज़िला-हरिद्वार (उत्तरांचल) फोन : 0134-416073

शाखा कार्यालय : 63, गली राजा केदार नाथ, चावड़ी बाज़ार, दिल्ली-6, फोन : 23261871

श्री प्रेम भारद्वाज महामन्त्री, सम्पादक, प्रकाशक, मुद्रक द्वारा आर. के. प्रिंटर्स प्रैस, टाण्डा फाटक जालन्धर से मुद्रित होकर आर्य मर्यादा कार्यालय, गुरुदत्त भवन, चौक किशनपुरा, जालन्धर से इसकी स्वामिनी आर्य प्रतिनिधि सभा पंजाब के लिए प्रकाशित हुआ। E-mail: apspunjab2010@gmail.com
आर्य मर्यादा में प्रकाशित सारी लेखन सामग्री से सम्पादक का सहमत होना आवश्यक नहीं। प्रत्येक विवाद के लिए न्याय क्षेत्र जालन्धर होगा।